ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-6* Issue-1* February- 2021
Innovation The Research Concept

संत दादूदयाल की वाणी : सामाजिक दृष्टि और वर्तमान में प्रासंगिकता

Sant Dadudayal's Voice: Social Vision and Relevance in Present Era

Paper Submission: 04/02/2021, Date of Acceptance: 23/02/2021, Date of Publication: 25/02/2021

अंजु शर्मा
विभागाध्यक्षा,
इतिहास विभाग,
एस. एस. जैन सुबोध गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, सांगानेर,
जयपुर, राजस्थान, भारत

सारांश

भारतीय विचार परम्परा अपने प्रारंभ से लेकर आज तक की विकास यात्रा में ''सर्वजन सुखाय, सर्वजन हिताय'' की हिमायती रही है। यह विकट परिस्थितियों में भी दूसरों के दुःख में दुखी और सुख में सुखी रहने की अभ्यासी रही है। लोक–परम्पराओं एवं रीतियों का संचरण समय और समाज में प्रधान मानवीय व्यवहारों के अनुसार होता है। किसी भी विचार को समृद्ध करने में तत्कालीन सामाजिक परिवेश और उसमें रह रहे व्यक्ति मन की सक्रियता कहीं अधिक प्रभाव छोड़ती है। मानव को सुसंस्कृत मानवीय रूप प्रदान करने की जो चिंता इस देश के संतों में रही है, ऐसी परिस्थितियाँ और ऐसा वातावरण संसार के अन्य अंचलों में भी होने के बावजूद, वैसी चिंता किसी अन्य में नहीं देखी जा सकती। संत हमारी धरती के श्रृंगार हैं, वे धर्म नहीं, धार्मिकता सिखाते हैं। अधर्म को अध्यात्म के मार्ग पर ले जाते हैं। मरे हुओं में जीवन का, जीवंतता का मंत्र फूँक देते हैं। मध्यकालीन निर्गुणभक्ति धारा में प्रचलित एवं प्रशंसित जितने भी रूप हैं, वे सब सामाजिकता की भावना से ओत–प्रोत है, लेकिन इन सबमें भी संत दादूदयाल जी का अपना विशेष स्थान है। समूचे ब्रह्माण्ड की चिंताओं को सहेजे हुए मानवीय संवेदना का मूल मंत्र प्रसारित करने वाले संत हैं, दादूदयाल जी, जलते झुलसते संसार को बचाने की ही उपचारी विधियाँ दादू जी की वाणी में अद्यतन विद्यमान है। इसलिए दादू का संदेश तब भी प्रासंगिक था और आज भी प्रासंगिक है। उनका ईश्वर संसार में पलायन का उपदेश नहीं देता, अपितु जीवन को संघर्षों से तपाते हुए सत्य–मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है।

The Indian thought tradition has been an advocate of "Sarvajan Sukhaya, Sarvajan Hitay" in the development journey from its inception till today. It has been a practice to remain unhappy and happy in happiness even in the grief of others even in the most difficult circumstances.The transmission of folk-traditions and customs takes place according to the predominant human behavior in time and society. In enriching any idea, then the social environment and the activity of the mind and the person living in it leave more impact.The concern of giving human beings a cultured human form has been in the saints of this country, despite such circumstances and such environment in other regions of the world, the same concern can not be seen in any other.Saints are adorners of our earth, they teach righteousness, not religion. They take the iniquity on the path of spirituality. In the dead, life spells life, vitality. All forms prevalent and acclaimed in the medieval Nirguna Bhakti stream are full of the spirit of sociality.But in all these, Saint Dadudayal ji has his own special place. Dadudayal ji, the remedial methods of saving the burning scorched world are updated in Dadu ji's voice, saving the concerns of the entire universe. So Dadu's message was relevant even then

मुख्य शब्द : वैश्विक, अद्यतन, आत्मश्लाखा, प्रतिबिम्बित, हृदयग्राही।
Global, Updated, Self-Explanatory, Mirrored, Heartwarming.

प्रस्तावना

भारतीय वाड़मय में संत साहित्य का प्रथम योगदान सामाजिक धरातल पर विद्यमान विविध संकीर्णताओं को समाप्त कर समन्वयशील परम्परा का उन्नयन करना रहा है। जाति–पांति, छुआछूत, भेदभाव, हिन्दू– मुस्लिम की भावना, संप्रदायवाद, क्षेत्रवाद आदि जितनी भी असामाजिक प्रवृतियाँ थी, इन्हें

जड़ से समाप्त करना संत समुदाय ने अपने जीवन का प्रथम उद्देश्य माना। संतो की इसी श्रृंखला में संत दादू दयाल का आविर्भाव हुआ जो मध्ययुग के एक महान संत, भक्त, युगांतकारी कवि एवं समाज सुधारक थे। उन्होंने अपनी सहज विचारधारा एवं समन्वयपूर्ण सिद्धान्त के माध्यम से मध्ययुगीन समाज को एक नयी दिशा दिखाई। संत दादू का प्रार्दुभाव ऐसे समय में हुआ जब संपूर्ण समाज अज्ञान के अधंकार, शोषण के साम्राज्य और आडम्बर युक्त धार्मिक परंपराओं के जाल में जकड़ा हुआ था। दादू ने अपनी वाणियों के द्वारा समाज को भयमुक्त और आडम्बर रहित बनाते हुए परमात्मा की सरल भक्ति की ओर उन्मुख किया। दादूकालीन समाज में मूर्तिपूजा के नाम पर भ्रष्ट आचार को बढ़ावा मिल रहा था, मठ मंदिरों पर पंडा– पुरोहितों ने कब्जा जमा लिया था, भगवत दर्शन के नाम पर लोगों को ठगा जा रहा था, ऐसे धार्मिक पाखण्ड़ो ने दादू दयाल को निर्गुणी बना दिया और उन्होंने मूर्ति पूजा का विरोध करते हुए कहा कि देवता झूठे हैं और उनकी सेवा मिथ्या–

''झूठे देवा, झूठी सेवा, झूठी करे प्रसारा।
झूठी पूजा, झूठी पाती, झूठा पूजनहारा।।[1]

दादूदयाल की समाजिक दृष्टि

बात चाहे हिन्दू– मुस्लिम के बीच एकता की प्रतिष्ठापना करने पर बल देने की हो या फिर विभिन्न प्रकार के वर्णो एवं जातियों में विभाजित हिन्दूओं को एक मंच पर लाने की अथवा कई एक अनैतिक वर्जनाओं में सिमटकर सिसक रही मानवीयता को सुंदर, सकारात्मक वातावरण प्रदान करने की, संत दादू दयाल जी इन सभी आवश्यकताओं पर अपने सकारात्मक व्यावहारिक दृष्टिकोण का परिचय देते है। संत दादू मानव को मानव रुप में ही देखने को आग्रही थे। विषमता की समस्त संभावनाओं को खारिज करते हुए उनका यह स्पष्ट मानना था कि इस चराचर संसार में जितने भी जीव हैं, वे सब एक ही परमात्मा के अंश हैं, एक दूसरे को भेद्भाव की दृष्टि से देखना उस ईश्वर को बाँटने के बराबर है, जो न तो समय संदर्भ की दृष्टि से उचित है और न ही मानवीय व्यवहार की दृष्टि से।[2] उनका स्पष्ट मानना था कि संप्रदायों की दलबंदी करके अगर सत्य को खोजने चलोगे तो सत्य को ही खो दोगे। उनकी शिष्य परंपरा में हिन्दू और मुसलमान दोनो थे। तत्कालीन समाज में धर्म के नाम पर जो आडम्बर प्रचलित थे, उसने समाज को विश्रृंखलित कर दिया था। जप, तप, माला, तिलक आदि बाह्य विधानों को ही भक्ति का वास्तविक प्रतीक मान लिया गया था। आडम्बर युक्त धार्मिक रूढ़ियों के अपनाये जाने के कारण समाज में विभिन्न वर्गों के संप्रदायों में वैमनस्यता बढ़ गयी थी। दादू की संवेदनशील संत दृष्टि से ये बुराईयाँ ओझल नहीं हो सकी। उन्होनें इस पर कड़ा प्रहार करते हुए कहा कि सारा जगत अंधा हो गया है, किसी को दिखाई नहीं देता। प्रायः लोग पत्थरों में कल्पित विभिन्न देवी–देवताओं को पूजते हैं, यह एक प्रकार का आत्मघात है। जो निरंजन ब्रह्म सभी के अंतःकरण में विद्यमान है, उसकी उपासना कोई नहीं करता। लोग भ्रमवश भैरों, भूत–प्रेतादि की पूजा करते हैं, लेकिन जो सबका सृजन कर्त्ता है, उसको कोई प्राप्त नहीं करना चाहता हैः–

''जग अंधा नैन न सूझरे, जिन सिरजे ताहि न बूझरे,
पाहण की पूजा करे, करि आतम घात।।
भैरों भूत सब भ्रम के, पसु प्राणी ध्यावै।
सिरजनहार सबनि का, ताकों नहीं णावैं।।[3]

मध्ययुगीन निर्गुण संतों ने समान रूप से अपने सांस्कृतिक चिंतन को प्रकट किया है, क्योंकि ये संत कवि भारतीय समाज के सच्चे प्रतिनिधि थे। इनका काव्य जनसाधारण के हदृय की पुकार थी। यही कारण है कि इनके काव्य में मानवता की प्रतिष्ठा और कथनी करनी की एकरूपता जैसे तथ्यों का वर्णन मिलता है। मध्ययुगीन सभी संतों (कवियों) कबीर, रैदास, नानक और दादू जी ने सभी धर्मों के समस्त जाति पांति संबंधी भेदभावों, अंधविश्वासों एवं ब्राहयाडम्बरों का खण्डन किया है। संत दादू दयाल ने इन सबसे अलग सहज एवं विनम्र तरीके से जाति पाँति का विरोध किया है। वे मानवतावादी एवं समानतावादी समाज का सृजन करना चाहते थे। वे कहते हैं कि सच्चे संतों की एक ही जाति होती हैः–

जे पहुँचे तै कहिगए, तिन की एकै बात।
सवैं सचाने एकमति, तिन की एकै जात।।[4]

दादू जी ने मानवता की प्रतिष्ठा का प्रतिपादन कर मानव–मानव में एकत्व की भावना के निर्माण का प्रयत्न किया है। इनके अनुसार समता की भावना ही संबंधों को सुदृढ़ एवं मृदुल बना सकती है। संत दादू जी ने समस्त धार्मिक आडम्बरों की आलोचना करते हुए इन्हें मिथ्या बताया है। वे मात्र उस एक 'अलख' से संबंध स्थापित करना चाहते हैं, जहाँ न हिन्दूओं का देवालय है, न मुसलमानों की मस्जिद। उन्होंने बाह्यचारों के साथ–साथ मतवाद, तीर्थ, व्रत, मूर्ति–पूजा, नमाज, हिंसा आदि की भी भर्त्सना की है। उन्होंने विनम्र तरीके से अपने विचारों को प्रकट कर लोगों को प्रभावित किया। निर्गुणवादी साधनों में आस्थावान होने के कारण दादू मूर्ति पूजा को नहीं मानते। उन्होंने मूर्तिपूजा एवं देवतावाद का खण्डन किया है, किंतु, उनके खण्डन में कहीं आक्रोश का स्वर नहीं है–

''ब्रह्म का वेद, विष्णु की मूर्ति, पूजै सब संसारा।
महादेव की सेवा लागै, कहाँ है सिरजनहारा।''[5]

मध्ययुगीन समाज की जिन परिस्थितियों में संत दादू का आविर्भाव हुआ और जिन राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक विकृतियो का सामना इन्हें करना पड़ा, उसके कारण उनके व्यक्तित्व और काव्य को एक विशेष दृष्टि मिली। समाज में व्याप्त रूढ़ियों और अंधविश्वासों का खण्डन मानव एकता तथा सहअस्तित्व की भावना को जागृत करना ही दादू जी के काव्य का मुख्य उद्देश्य रहा है। उन्होनें अपनी वाणी में सामाजिक विचारो एंव जनमानस की आवाज को निर्भीक, परंतु विनम्र भाव से मुखरित किया है। उनके काव्य में जहाँ एक ओर वैराग्यभाव और भक्ति भावना के दर्शन होते हैं, वहीं दूसरी ओर मनुष्य को क्रियाशील जीवन बिताने की प्रेरणा भी मिली है।[6] दादू के प्रभावशाली व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए परशुराम चतुर्वेदी लिखते है, ''दादू का व्यक्तित्व अत्यंत

आकर्षक था और उनके कोमल हृदयग्राही स्वभाव के कारण ही अनेक व्यक्ति उनके प्रभाव में आ जाते थे। उनके सत्संग का प्रभाव लोगों पर इस प्रकार पड़ता था कि वे उन्हें बहुधा अपना गुरु तक स्वीकार कर लेते थे और उनके उपदेशानुसार आजीवन आचरण करने पर कटिबद्ध हो जाते थे।[7]

अध्ययन के उद्देश्य

संत दादूदयाल जी ने अपनी सहज एवं विनम्र वाणी एवं संदेशों के द्वारा तत्कालीन समाज में व्याप्त संघर्ष व जातिगत भेदभाव का पुरजोर विरोध कर समानता के भाव व्यंजित करने का सुदृढ़ प्रयास किया। उन्होंने एक ऐसे समाज की कल्पना की जो ऊँच नीच की भावना से सर्वथा शून्य हो, जो ब्राह्मण, शूद्र, हिन्दू–मुस्लिम के भेदभाव से पूर्णतः ऊपर हो। उनकी वाणी आज के इस वैश्वीकरण के दौर में भी मानव मात्र को यह संदेश देती प्रतीत होती है कि हमें हर प्रकार के भेदभाव से ऊपर उठकर एक स्वस्थ समाज के निर्माण हेतु प्रयासरत रहना चाहिए। ऐसे ही उदात्त विचारों के द्वारा संत दादू दयाल की वाणी तब भी प्रासंगिक थी और आज भी प्रासंगिक है। दादू की सामाजिक समरसता की भावना एवं जीवन दर्शन को सार रूप में समझना ही शोध का महत्ती उद्देश्य रहा है।

भक्ति कालीन संत एंव दादू दयाल

मध्यकाल की राजनैतिक उथल–पुथल, आर्थिक वैष्म्यता, सामाजिक रूढ़ियाँ, अंधविश्वास एंव बाहयाडम्बर ने क्रांतिकारी समाज सुधारक, स्पष्ट वक्ता, सच्चरित्र उदारमना संतों को जन्म दिया। इन संतों का मध्यकालीन भारतीय संस्कृति के साथ–साथ परवर्तीकाल के जन–जीवन पर भी पर्याप्त प्रभाव पडा। आज का भौतिकवादी आस्किताहीन समाज भी बहुत सीमा तक मानसिक और आत्मिक शांति इन्हीं संतों की वाणी से प्राप्त करता है। मध्यकालीन निर्गुणभक्ति धारा में प्रचलित एवं प्रशंसित जितने भी रूप हैं। वे सब सामाजिकता की भावना से ओतप्रोत है। कबीर, नानक एंव रैदास आदि संतों की भांति मध्ययुगीन भारतीय समाज की धार्मिक एवं सामाजिक दशा को सुधारने, भक्ति का प्रसार करने एवं भक्ति आंदोलन के द्वारा समाज में एक नयी चेतना सृजित करने में संत दादूदयाल का योगदान भी अतुलनीय रहा है। उत्तरी भारत में भक्ति भाव को प्रतिष्ठापित करने में दादू का महत्व कबीर व नानक के समान है।[8]

दादू जी पर अपने पूर्ववर्ती संतो का प्रभाव निःसंदेह पड़ा था। विशेषकर संत कबीरदास के प्रभाव को तो वे स्वंय अपनी वाणी में उल्लिखित करते हैं। परतुं इसके बावजूद दादू जी की अपनी एक अलग शैली, भाषा और दर्शन था। जो उनको संत साहित्य के इतिहास और भक्ति आंदोलन के प्रणेताओं में एक अलग स्थान का हकदार बनाता है। संत दादू जी और उनके पंथ के विषय में निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वे आज के समाज के लिए भी उतने ही प्रासंगिक है, जितने तत्युगीन समाज के लिए थे। कारण, कि आज भी दुर्भाग्यवशं हमारे समाज में जातिभेद, वर्णभेद एंव धार्मिक भिन्नता के भाव देखने को मिल जाते हैं। निःसंदेह ऐसी स्थिति में दादू के समन्वयवादी सिद्धान्त एंव मानवतावादी धर्म को अपनाकर हम अपने समाज को एक सूत्र में बांध सकते हैं। संत कबीर की भाँति दादू ने भी पूर्ण प्रखरता से जप, माला, छापा, तिलक आदि का विरोध किया है। उनका मानना है कि बाह्य माला फेरने से किसी सिद्धि की प्राप्ति नहीं हो सकती। सद्गुरू ने मन में ही माला का निर्माण कर दिया है। उनका कहना था, मैं मन ही मन प्रभु का स्मरण करता रहता हूँ, यही सच्चा जप है–

"सद्गुरू माला मन दिया परम जाप यूँ होय।
बिन हाथों निस दिन जपे, परम जाप यूँ होय।।
माला तिलक सूँ कुछ नहीं, काहुँ सेती काम।
अंतर मेरे एक है, अहि निस उसका नाम।"[9]

सतं कबीर की ही भाँति दादू दयाल ने भी जाति–पाँति, ऊँच–नीच जैसी मानव विभेदक भावना को संपूर्ण समाज के लिए निर्रथक बताया। उनके विचार से सभी मानव एक है। सृष्टि में सभी कुंजर से लेकर कीट तक एक ही परमात्मा के अंश है। उसका कोई वर्ण नहीं है, किंतु सभी वर्ण उसी के है, तो फिर भेद कैसा?

"दादू समि करि देखिए, कुँजर कीट समान।
दादू दुविधा दूर करी, तजि आपा अभिमान।"[10]

वास्तव मे दादू एकनिष्ठ भाव से ईश्वर की आराधना में रत रहने वाले संत थे। तर्क वितर्क और वाद–विवाद से कभी संगति नहीं हुई। कभी वाद–विवाद में फँसे भी नहीं। उन्होनें सदैव प्रभु को माँगा, प्रभु से नहीं माँगा। कबीर की ही भाँति दादू का ज्ञान भी अनुभव का ज्ञान था। उन्होनें अनुभव के आधार पर ही अपनी बातें कहीं, पंडिताई के आधार पर नहीं। तत्युगीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया स्वरूप उनका उद्धेश्य एक ऐसे समाज की स्थापना करना था, जहाँ भेदभाव, ऊँच–नीच, जाति–पाँति, अनाचार, अत्याचार व आडम्बर का बोलबाला ना हो। दादू जी गरीब और दलित के प्रति सदैव उदार दृष्टि रखने वाले थे।[11] दादू जी ने सामाजिक, धार्मिक या सांप्रदायिक विचारों की संकुचित परिधि को त्यागकर लोगों को सार्वभौमिक मूल्यों एंव मान्यताओं को अपनाने की सलाह दी है। उनकी धर्म–साधना संप्रदायों और धर्म से इतर विश्व धर्म और विश्व मानवता की प्रतिष्ठा करती है।[12] दादू जी जीवन में सत्य के उपासक थे। उन्होंने कथनी और करनी के भेद को स्वीकार नहीं किया। वे यह चाहते थे कि जो कुछ भी कहा जाए, उसे किया भी जाए।[13]

कोई भी संत अपने पंथ या संप्रदाय का स्वंय बखान नहीं करता। संतजन तो आत्मश्लाखा से दूर ही रहते हैं। दादू भी एक निस्पृह संत थे। वे पंथ तथा संप्रदाय के विरूद्व थे। वे कहते है कि प्राकृतिक पदार्थ–पवन, पानी, पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चंद्रमा तथा देवता आदि जब एक पंथ में नहीं रहते तो किसी पंथ का अनुयायी बनकर क्यों रहा जाए।[14] दादू जी ने अपने जीवनकाल में ही एक संप्रदाय का सूत्रपात किया था, जिसका उद्वेश्य किसी पंथ की स्थापना नहीं, अपितु परस्पर विरोधी धर्मों या संप्रदायों के बीच समन्वय लाने वाली बातों का निरूपण करना था। इसलिए व्यक्ति एंव समष्टि मंगल की भावना के परिणामस्वरूप "दादू पंथ" का उदय हुआ। जिसका उद्धेश्य समाज के सभी वर्गो के बीच समन्वय एंव सहज जीवन पद्धति का निर्माण करना था, न कि संप्रदाय

विशेष का संगठन। दादू पंथ के इसी आदर्श व समन्वयपूर्ण भावना का सुंदर चित्रण दादू जी की वाणी में मिलता है–

भाई रे ऐसा पंथ हमारा, द्वेष रहित पंथ
गहि पूरा, अधरण एक अधारा।।
वाद–विवाद काहू सो नाहिं, माही जगत थे न्यारा
समदृष्टि सुझाई सहज मे ,आपहि आप
विचारा ।।[15]

स्पष्ट है कि दादू पंथ के अनुसार किसी से वाद–विवाद करना व्यर्थ है। सब में अपने को ही देखने के कारण साधक के मन में समदृष्टि का विकास होता है, वह अपने पराये का भेद भूल जाता है। वह किसी में भी शत्रुभाव नहीं देखता । वह मन एंव चित्त के समस्त विकारों एवं संकुचित मनोवृतियों से ऊपर उठ जाता है। वह किसी के मोह–पाश में बँधकर सिरजनहारा को नहीं भूलता। अतः दादू के अनुसार समाज के सभी वर्गो एंव जातियों में प्रेम का भाव एंव समानता का बोध जाग्रत होता है, चाहे वह हिन्दू या मुसलमान, गरीब हो या धनी या उच्च वर्ण का हो या निम्न वर्ण का हो।[16]

दादू एक निर्भीक संत थे। जागरुक समाज दृष्टा थे। उनके उपदेशों में लोक चेतना प्रतिबिंबत होती है। उनकी वाणियों में जातीय सांस्कृतिक चेतना प्रतिध्वनित होती है, जिसमें सभी रुढ़ियों और अंधविश्वासग्रस्त मान्यताओं का तिरस्कार है, भेदभाव जन्य सामाजिक रीतियों का खण्ड़न है, और कथनी–करनी की एकता का प्रतिपादन है। नित्य नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों के बढ़ते प्रभाव में यह शंका होना अपेक्षित है कि क्या आज भी भक्ति साहित्य और संत प्रासंगिक है? जहाँ दैनिक चर्या ही जीवन जीने के मूलभूत संसाधनों को जुटाने से शुरु हो रही है, वहाँ क्या कबीर, दादू, रज्जब , रविदास आदि संत और उनकी वाणियाँ प्रासंगिक हो सकती है? भक्ति साहित्य न तो कुण्ठा की उपज है और न निवृतिमूलक। स्वकर्म में रत होकर भी ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। कबीर, दादू का संदेश तब भी प्रासंगिक था और आज भी प्रासंगिक है। उनका प्रभु संसार से पलायन का उपदेश नहीं देता, अपितु जीवन को संघर्षो से तपाते हुए सत्य मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है।[17]

निष्कर्ष

समूचे ब्रह्माण्ड़ की चिंताओं को सहेजे हुए " सर्वेभवन्तु सुखिनः" की लोककल्याणी चेतना का विकास करने वाले, मानवीय संवेदना का मूल मंत्र प्रसारित करने वाले संत है दादू दयाल जी। आज के जलते– झुलसते ,भीतर बाहर ध्वस्त होते संसार को बचाने की ही उपचारी विधियाँ दादू जी की वाणी में अद्यतन विद्यमान है। समूची दादू वाणी ही जैसे वेद वाणी की भाँति सुधा वर्षिणी है।[18] दादू दयाल जी का चिंतन वैश्विक हित की भावना से परिपूर्ण है। उनकी वैचारिक दृष्टि मात्र भारतीय परिस्थितियों तक ही सीमित नहीं थी अपितु इसके केन्द्र में सपूर्ण विश्व समाहित था। धर्म, जाति और क्षेत्र की समस्या से उस समय का सकल संसार कहीं न कहीं दूषित था। संपूर्ण मानव जाति के साथ–साथ प्राणी मात्र को भी एक ही ईश्वर का अंश बताना इनकी वैश्विक दृष्टि का ही परिचायक हैं। आज वैश्वीकरण की बात तो की जाती है, पर व्यक्तिगत स्वार्थता के आवरण में हम स्वंय को भूल गए है। अब समय आ गया है, जब दादू दयाल की शिक्षाओं का अक्षरशः पालन और अपनी सोई हुई आत्मा को जागृत कर सकल संसार को ईश्वर की देन मानकर अपना समझे। ऐसी स्थिति में न तो किसी प्रकार की कटुता हमारे अंदर रह जाएगी और न ही किसी प्रकार का वैमनस्य।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *दादू दयाल की वाणी, वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, भाग–1, पृ. 19*
2. *पांडेय, अनिल कुमार," दादू दयाल की वाणीः समय और समाज" मीरायन, मार्च–मई 2016, पृ. 29*
3. *चतुर्वेदी, परशुराम, "दादू दयाल ग्रंथावली" पद 29, पृ. 389.*
4. *स्वामी मंगलदास– दादू वाणी, साखी–172, पृ. 282*
5. *स्वामी मंगलदास– दादू वाणी, आपा को अंग–12, साखी–137, पृ. 245*
6. *सिंह, रविन्द्र कुमार, ''दादू काव्य की प्रासंगिकता '' पृ. 43*
7. *चतुर्वेदी, परशुराम, ''उत्तरी भारत की संत परम्परा'', पृ. 421*
8. *शर्मा, वासुदेव, ''संत कवि दादू और उनका पंथ'', पृ. 292*
9. *दादू दयाल की वाणी, वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, भाग–1, पृ. 155*
10. *चतुर्वेदी, परशुराम, ''दादू दयाल ग्रंथावली'', पृ. 274*
11. *सिंह, रविन्द्र कुमार '' दादू काव्य की प्रासंगिकता'' पृ. –96*
12. *वही, पृ. 70*
13. *वही, पृ. 96*
14. *स्वामी मंगलदास– दादू वाणी, पृ. 269*
15. *वही, पृ. 495*
16. *पांडे, प्रो. श्रीनिवास, '' समत्वबोध एवं संत दादूदयाल जी का संदेश,'' प्रज्ञा पत्रिका, पृ. 1 वाराणसी*
17. *पांडेय, अरुण कुमार, ''संत दादू और उनकी सामाजिक दृष्टि '' , वैचारिकी, जनवरी– फरवरी 2014, पृष्ठ 59*
18. *वंशी, डॉ. बलदेव (सं.) ''दादू ग्रंथावली'', नई दिल्ली, (प्रकाशन संस्थान) 2005, भूमिका*